-=: । :=- Preface

-=: प्रस्तावना :=- Introduction

भाषायी अभिव्यक्ति का वरदान ही मानव को चराचर जगत के सभी प्राणियों में श्रेष्ठता का स्थान प्रदान करता है । यदि भाषा व अभिव्यक्ति का यह ईश्वरीय वरदान मानव को प्रदान न होता, तो उसकी क्या स्थिति होती, इसका अनुमान लगाना हर एक बुद्धिजीवी की चिन्तन-क्षमता से परे नहीं है ।

काल के निरंतर प्रवाह में प्रवाहमान प्राणी नाना प्रकार के खट्टे-मीठे आयामों के अन्तराल से गुजरता हुआ, अपने गंतव्य को प्राप्त करता है । बदलते हुए परिवेश कभी तो उसके मानस-मराल को प्रमुदित कर देते हैं, तो कभी क्षोभ से आक्रांत कर देते हैं । इस प्रकार के परिवेश में वह जीने के लिए विवश तो होता है, परन्तु कालगति उसकी अभिव्यक्ति को नियंत्रित नहीं कर सकती और अभिव्यक्ति का वह वरदान तब होता है चरितार्थ । चिंतन-मनन, प्रमुदता और क्षुब्धता, सुख और दुख, निर्भयता व आक्रांतता आदि से प्रभावित होकर उसकी मानस-वीणा के संपूर्ण तार झंकृत होने लगते हैं, तो वह समाज में कभी तो साहित्यकार के रूप में, कभी क्रांतिकारी के रूप में तो कभी कलाकार के रूप में प्रस्तुत होता है और भटकती हुई मानवता को युग के अनुरूप रास्ता दिखाता है ।

सामाजिक सृजन के क्षेत्र में कलाकार एक अहं भूमिका अदा करता है और उसमें भी साहित्यकार । आदिकाल से लेकर आजतक, यदि दृष्टिपात किया जाए तो यह निःसंदेह कहा जा सकता है, कि- बिलखती हुई मानवता को साहित्यकारों ने न केवल सांत्वना प्रदान की है अपितु एक पुरोहित के रूप में उसका मार्ग-दर्शन भी किया है । मानव में सोई हुई भावनाएँ- साहस, धैर्य, उत्साह एवं संयम आदि को उद्बोधित किया है ।

बाल्यावस्था से ही मेरा सम्बन्ध भारत-वर्ष की पावन मिट्टी के उस क्षेत्र से रहा है, जहाँ की गौरव गाथाएँ, वीरों के ऊष्मायुक्त रक्त का प्रवाह एवं उनकी शौर्य और पराक्रम की कथाएँ आज भी उदासीन मानव में नवीन चेतना का संचार करती है । चंदेरी के राजा परमाल, औरछा के राजा बुन्देला, झाँसी की वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई आदि के नाम कौन नहीं जानता ? विद्यार्थी जीवन में जब कभी सावन-भादों मास में ढोलक और मंजीरा के साथ ओजस्वी लोक-साहित्य आल्हा का

श्रवण करता था, तो कुछ नए तथ्यों को उद्घाटित करने की तीव्र लालसा उत्पन्न होती थी । रानी लक्ष्मीबाई की शौर्यमयी गाथाओं ने इस भावना को एक नया आयाम प्रदान किया । मेरे पूजनीय चाचाजी, स्वर्गीय श्री दीनदयालु वर्मा, {प्रवक्ता} सनातन धर्म इण्टर कालेज उरई, जालौन, स्वयं बुन्देलखण्ड के एक सुप्रसिद्ध आल्हा-गायक थे । उनके तमाम आल्हा-लड़ाइयों के कैसेट एवं लखनऊ {उ.प्र.} तथा छतरपुर {म.प्र.} दूरदर्शन केन्द्रों द्वारा आल्हा-प्रसारण, आज भी बुन्देलखण्ड एवं उत्तर भारत में धूम मचाए हुए हैं । उनके मार्गदर्शन एवं संसर्ग में आकर मेरी ओजस्वी साहित्य की भावना को नया संबल प्राप्त हुआ । विद्यालयी शिक्षाग्रहण करने के साथ-साथ यदा-कदा मुझे उनके साथ आल्हा-गायन कार्यक्रम में जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ । उनकी ओजस्वी वाणी एवं अनुरूप साहित्य का श्रवण करके बार-बार उत्सुकता होती थी, कि उनका अनुसरण किया जाए तथा आल्हा के क्षेत्र में नवीन प्रतिभाओं को प्रकाश में लाया जाए ।

साहित्यकार जहाँ एक ओर मानव-कल्याण के ऊँचे आदर्शों को लेकर अपने उत्तरदायित्व के आयाम में उतरता है, वहीं वह समाज में व्याप्त निराशा के स्थान पर आशा तथा हतोत्साह के स्थान पर उत्साह का संचार करना चाहता है । दुर्बल मानव में भी बल का फव्वारा बहा देना चाहता है । इस संदर्भ में "राम विलास शर्मा" कहते हैं कि—

"साहित्य का पांचजन्य समरभूमि में उदासीनता का राग नहीं सुनाता । वह मनुष्य को भाग्य के आसरे बैठने और पिंजड़े में पंख फड़फड़ाने की प्रेरणा नहीं देता । इस तरह की प्रेरणा देने वालों के वह पंख कतर देता है । वह कायरों और पराभव प्रेमियों को ललकारता हुआ एक बार उन्हें भी समरभूमि में उतरने का बुलावा देता है ।" {1}

इस प्रकार जब हम साहित्य के विभिन्न कालों के आयामों को अपनी दृष्टि में समेटते हैं, तो परिस्थितियों के अनुसार बदले हुए तेवर नज़र आते हैं । जब हम काव्य के क्षेत्र में अवलोकन करते हैं, तो हृदय में समस्त रसों के स्थाई भाव पंख फड़फड़ाने लगते हैं । कभी रति-भाव श्रृंगार की ओर खींचता है, तो कभी उत्साह वीर रस की ओर । कभी हास्य की अद्भुत भावना, तो कभी वात्सल्य की निश्छल निर्झरणी ।

- -

{1} विराम चिह्न : राम विलास शर्मा, पृ.सं. 40.

वीरगाथा कालीन साहित्य अपनी भाव प्रबलता व गरिमा का अनूठा खजाना है तथापि उसके किसी न किसी कोने में रिक्तता का आभास होता है । उस रिक्तता की पूर्ति का मेरा लघु प्रयास रहा है ।

रासो परंपरा के अन्तर्गत लिखे गए ग्रंथ आज भी शंका एवं अप्रामाणिकता की चादर ओढ़े हुए हैं । इस रिक्तता से प्रभावित होकर मेरा व्यापक प्रयास है, कि वीरगाथा कालीन साहित्य के इस अभाव को दूर किया जाए । परिणाम स्वरूप रासो काव्य की संदिग्धता कम हो सके और प्रस्तावित साहित्य की पृष्ठभूमि में नवीन व वास्तविक तथ्य प्रकाश में आ सकें । भारतीय इतिहास में भी "परमाल रासो" का संक्षिप्त विवरण मिलता है । "आल्हखण्ड" कहकर साहित्यकारों एवं इतिहासकारों ने अपनी इतिवृत्ति करदी । जबकि वास्तविकता यह है, कि "परमाल रासो" स्वयं में एक प्रबन्ध काव्यात्मक महाकाव्य है एवं हिन्दी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग है । साहित्यकारों ने क्षेत्रीय या लोकसाहित्य कहकर अपनी साहित्यिक भूमिका का निर्वाह किया है । परन्तु, मात्र इतना कह देने से क्या दायित्व पूर्ण हो जाता है ? मेरा ऐसा मंतव्य है कि कदापि नहीं । साहित्य निरंतर सृजन का नाम है । जब तक सृष्टि का चक्र चल रहा है या चलता रहेगा, तब तक नए-नए, साहित्य के ऐतिहासिक तथ्य सामने आएंगे । अतएव "परमाल रासो" की विस्तृत जानकारी, उसकी विवेचना आदि के अभाव में हिन्दी साहित्य का समग्र इतिहास कदापि संपूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता । यह हिन्दी साहित्य का अभिन्न अंग है जो भारतवर्ष के विशाल भूभाग में लोगों की जिह्वा पर आज भी विद्यमान है और वीरता की गाथाओं में अपना एक विशेष स्थान रखता है । इसका अपना एक व्यापक साहित्य है, जो लिखित एवं मौखिक रूप में लोकमुख में जीवित है एवं जिसकी एक अपनी गरिमा है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का विषय पूर्णतः नवीन है एवं अपने मूलरूप को प्रस्तुत करने में समर्थ है । मेरी अध्ययन-परिधि से प्राप्त जानकारी के आधार पर भारतवर्ष के अन्य विश्व-विद्यालयों में "आल्हखण्ड" या "परमाल रासो" का आंशिक विवेचन सम्बन्धी कार्य सामान्यतः हुआ है, परन्तु प्रस्तावित शोध प्रबन्ध में "परमाल रासो" का समग्र विवेचन करने का यथासंभव प्रयास किया गया है । इस शोध प्रबन्ध में उन गूढ़ तथ्यों एवं रहस्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है, जो अब तक लगभग अछूते-से थे । उन महा पराक्रमी भारतीय सपूतों का परिचय कराया गया है,

जिनके नाम तक, हमारे देश के कुछ क्षेत्रों के लोग नहीं जानते हैं । इन वीरों की अस्मिता पर आज तक चादर बिछी हुई थी और उनके पराक्रम की गाथाएँ मात्र भारत-माता जानती थी । किसी देश का इतिहास उसकी अमूल्य थाती होता है । व्यक्ति अपनी जीवन-लीला समाप्त करके अपनी मातृभूमि की गोदी में चिरनिंद्रा में सो जाता है, उसकी कीर्ति-पताका फहराता है इतिहास । इतिहास, मात्र विशेष घटना या घटना-क्रमों का नाम नहीं है । वह है, संपूर्ण मानव समाज की संस्कृति, सभ्यता एवं उसके कार्य व्यापार, उनकी गौरवमयी अस्मिता, उनकी जुझारू प्रवृत्तियाँ एवं दृढ़ प्रतिज्ञ भावना ।

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध में, चन्देरी-नरेश महाराज परमर्दिदेव, उनके वंशज एवं महापराक्रमी सूबेदार- सरदार आल्हा-ऊदल की शौर्यगाथाएँ अपने मूल रूप में प्रस्तुत हुई हैं । जहाँ तक अतिशयोक्ति पूर्ण कथानकों या वर्णनों का प्रश्न है, कल्पना तत्व काव्य का एक अभिन्न तत्व है । भाव, बुद्धि, शैली तब तक काव्य का सृजन करने में पूर्ण सक्षम नहीं हो सकते हैं, जब तक कि उसमें कल्पना का सामंजस्य न हो । साहित्यकार आधार-हीन भव्य काव्य-महल की संरचना कदापि नहीं कर सकता । यह हो सकता है, कि सामान्य आधार पर या सामान्य बुनियाद पर कल्पना के योग से आकर्षक काव्य-महल का निर्माण करे । अस्तु, आधार-विहीन साहित्य की सृजना न केवल मुश्किल है अपितु असंभव है ।

"परमाल रासो" का इतिहास उसका ठोस एवं मूल आधार है, जो सर्वथा मौलिक एवं श्रेष्ठ है । जहाँ तक शंका एवं भ्रांतियों का प्रश्न है । आज झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, जिसने 1857 की प्रथम आज़ादी की लड़ाई में अपना अद्भुत जौहर दिखाया और अंग्रेजी सेना-अधिकारियों ने भी जिसकी प्रशंसा के गीत गाए, उस वीरांगना की वीरता भी आलोचना का विषय बनी हुई है । ऐतिहासिक दृष्टि से यह बहुत पुरानी घटना नहीं है । साहित्यकारों का एक वर्ग तो, निराला जैसे महाप्राण, सूरदास जैसे साधक, यहाँ तक कि गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित "रामचरित मानस" जैसे महाकाव्य को शंका की दृष्टि से देखता है । कहने का तात्पर्य यह है, कि शंका और आलोचना मानवीय प्रवृत्ति है । अतएव इस भावना से मुक्ति पाना संभव नहीं है ।

खजुराहो के मन्दिर, कालिंजर का किला, महोबा के ऐतिहासिक तालाब एवं महल के भग्नावशेष आदि प्रस्तुत ग्रंथ के मूल आधार हैं। सिरसागढ़ का किला, मनियादेव का मन्दिर, महोबा नगर (बुन्देलखण्ड) में स्थित "परमाल रासो" या राजा परमर्दिदेव की कीर्ति के सुदृढ़ आधार-स्तंभ हैं। रूपककार एवं संस्कृत भाषा के प्रमुख विद्वान महामात्य वत्सराज का नाम कौन नहीं जानता? वत्सराज, कालिंजर के राजा परमाल के आमात्य थे तथा उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्मन देव के समय में भी उसी पद पर प्रतिष्ठित रहे। इस उद्‌भट विद्वानाचार्य ने चंदेल वंश की कीर्ति-पताका को उजागर किया है। इस विद्वान ने न केवल परमाल वंश की विरुदावली प्रस्तुत की, बल्कि चन्देल-नरेश परमर्दिदेव का शासन प्रबन्ध एवं उनकी प्रकृति तक को उजागर किया है। वत्सराज के रूपक (रूपषटकम्) इसके ठोस प्रमाण हैं। वत्सराज के रूपकों के उदाहरण "परमाल रासो" की मौलिकता एवं प्रामाणिता की पुष्टि करते हैं।

"काशी नागरी प्रचारिणी सभा" द्वारा प्रकाशित एवं डॉ॰ श्याम सुन्दर दास द्वारा संपादित "परमाल रासो" के अतिरिक्त किसी अन्य साहित्यकार की दृष्टि इस विषय की ओर आकर्षित नहीं हुई। शोधकर्ताओं की लघु बुद्धि की बात ही इतर है। किसी विशेष ग्रंथ के, किसी अंश विशेष की विवेचना अथवा समीक्षा करना पर्याप्त नहीं होता, यह तो आंशिक ज्ञान या आंशिक विवेचन होता है। ग्रंथ का समग्र रूप प्रकाश में आना चाहिए। इस शोध प्रबन्ध में "परमाल रासो" जिसे, संदिग्धता के नाम पर नकारा जाता रहा है, की समग्र रूप में विवेचना की गई है। उसके प्रत्येक पहलू को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। विभिन्न ग्रंथों का पारायण, आल्हा के सुप्रसिद्ध गायकों, लोक जीवन की मान्यताओं एवं लोकमुख की मीमांसाओं के सारतत्व का परिपाक कर, उसे संपूर्णता प्रदान की गई है। अतः यह अब तक के शोध प्रबन्धों की श्रृंखला में निःसंदेह अपनी मौलिकता का सफल प्रयास कहा जा सकता है।

बुन्देलखण्ड की पावन धरती पर घटित घटनाएँ, आज के धुंधले वातावरण में हमें प्रभावित क्यों नहीं करती? इसका कारण स्पष्ट है, कि मानवीय अस्मिता से हमने अपना नाता तोड़ लिया है। आधुनिकता की रंगीली रातों और चकाचौंध में हम अपनी धमनियों में प्रवाहित रक्त की ऊष्मा को भूलते जा रहे हैं। डिस्को के म्यूजिक एवं विलासिता की मादकता में स्वयं को खपा बैठे हैं। अपनी अस्मिता को स्वार्थ के दाँव पर लगाते जा रहे हैं। आवश्यकता है, अपने पूर्वजों की भीषण गर्जना

सुनने की, उनकी ललकार से चेतना प्राप्त करने की और निद्रामग्न मानवीय चेतना को जगाने की । प्रस्तावित शोध-प्रबन्ध, इस पहलू के संदर्भ में भी अपनी विशिष्टता का उन्नायक है ।

साहित्य काल्पनिक लोक में विचरण अथवा विदग्ध-वापियों के जादूभरे उद्यानों में भ्रमण करने का नाम नहीं है । आज बदलते परिवेश में साहित्य और साहित्यकार की भूमिका कुछ परंपरागत साहित्य से अधिक है । जीवन में विभिन्न मूल्यों में नित्य परिवर्तन हो रहे हैं । साहित्य का उद्देश्य, साहित्यकार होने का दंभ करके, मानव मुक्ति के गीत गाकर, भारतीय जनमानस को पराधीनता और पराभव का पाठ पढ़ाना नहीं है बल्कि उदासीन भारतीय अस्मिता और गौरव की चेतना प्रदान करना है । सोई हुई मानवीय भावनाओं को जगाना है । जिन साहित्यकारों को अपने देश की मिट्टी से प्यार है, इस धरती पर बसने वालों से स्नेह है, जो साहित्य की युगांतकारी भूमिका समझते हैं, वे आगे बढ़ रहे हैं । उनका साहित्य जनता का रोष और असन्तोष प्रकट करता है, उसे आत्मविश्वास और दृढ़ता प्रदान करता है ।

प्रस्तावित शोध-प्रबन्ध में भारत-भूमि की अस्मिता, भारतीय मिट्टी से बने वीरों की वीरता एवं गौरव की गाथाओं को मूलरूप में प्रस्तुत कर, उनकी विवेचना करने का प्रयास किया गया है । आज के वैभव संपन्न और चकाचौंध के वातावरण में हमारे व विद्यार्थियों के रक्त का रंग बदलता जा रहा है । जोश के स्थान पर उदासीनता घर करती जा रही है । रक्त का प्रवाह मन्द पड़ता जा रहा है । ऐसे समय में इस प्रकार के ओजस्वी रचनाग्रंथों अथवा शोध-प्रबन्धों का साहित्यिक महत्व और भी बढ़ जाता है । वीरता से ओतप्रोत गूढ़ तथ्यों और कथाओं पर यदि आज भी परदा पड़ा रहे, तो साहित्य के क्षेत्र में बड़ा व्याघात होगा । हम अपने पूर्वजों की गरिमा को पहचान से अपरिचित रह जायेंगे । यह शोध ग्रंथ, साहित्य में इस भावना का एक नया आयाम जोड़ता है, जो निश्चय ही साहित्य के क्षेत्र में उपयोगी है । इसकी उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध नौ परिच्छेदों में विभक्त किया गया है । अन्त में परिशिष्ट की भी योजना है ।

प्रथम परिच्छेद के अन्तर्गत "रासो" शब्द की व्युत्पत्ति, पृष्ठभूमि,

समसामायिक परिस्थितियाँ, हिन्दी साहित्य के इतिहास में रासो परंपरा, हिन्दी रासो काव्यों का संक्षिप्त परिचय एवं रासो साहित्य की प्रामाणिकता की विवेचना एवं प्रासंगिता की समीक्षा की गई है ।

द्वितीय परिच्छेद में "परमाल रासो" की प्रामाणिकता, परमाल रासो अथवा आल्हखण्ड के प्रचलित रूप, परमाल रासो के मूल रूप की खोज, आल्हखण्ड के विविध भाषायी रूप, समीक्षा के प्रश्न, आल्हखण्ड की लिखित एवं मौलिक परंपराएँ, प्रासंगिकता का सवाल, परमाल रासो का इतिहास या ऐतिहासिकता, जिसमें चन्देल राजवंश-परंपरा का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है । इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित महामात्य वत्सराज का जीवन, परमाल रासो एवं परमाल वंश की शासन-व्यवस्था आदि के बारे में उनके विचारों का प्रस्तुतीकरण किया गया है । परमाल रासो अथवा आल्हखण्ड के रचयिता महाकवि जगनिक का जीवन-वृत्त एवं उनके काव्य काल का भी विस्तृत उल्लेख किया गया है ।

तृतीय परिच्छेद में राजा परमाल का प्रभुत्व, राजा जयचन्द [कन्नौज-नरेश] का परमर्दिदेव को बुलाना, परमर्दिदेव द्वारा कन्नौज प्रशासन के अन्तर्गत यमुना नदी के समस्त घाटों का प्रबन्ध करने आदि का वर्णन है । जयचन्द द्वारा वासुदेव [महोबा के राजा] की पुत्री मल्हना के सौन्दर्य के बारे परमाल को बताना तथा महोबा की पहली लड़ाई की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है । महोबा-विजय के बाद परमाल का मल्हना के साथ विवाह एवं परमाल द्वारा अस्त्र-त्याग और युद्ध न करने के प्रण का उल्लेख किया गया है । इसके अतिरिक्त दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान द्वारा संयोगिता [जयचंद की दासी-पुत्री] हरण, कन्नौज का संग्राम एवं रतीभान [जयचंद के भाई] की वीरगति का प्रसंग है । इसके उपरान्त महोबा के द्वितीय संग्राम का वर्णन है, जिसमें माड़ौगढ़ के राजकुमार करिंगाराय द्वारा दस्सराज व बच्छराज [आल्हा-ऊदल और मलखान के पिता] की कैद व उनकी हत्या का प्रसंग है । तत्पश्चात् प्रसंग आता है-आल्हा-ऊदल एवं मलखान की प्रथम विजयश्री का उल्लेख, जिसमें माड़ौ की लड़ाई है । इस संग्राम में माड़ौ-नरेश जम्बे एवं उसके पुत्रों की आल्हा-ऊदल द्वारा समरभूमि में हत्या कर दी जाती है और वे इस प्रकार अपने पिता की दर्दनाक हत्या का बदला लेते हैं । इसी परिच्छेद में आल्हा के विवाह के संदर्भ में नैनागढ़ का संग्राम व पथरीगढ़ की भीषण लड़ाई की कथा वर्णित है । पथरीगढ़ का संग्राम बच्छराज-पुत्र मलखान [सिरसा-नरेश] के विवाह से सम्बन्धित है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में उल्लिखित चतुर्थ अध्याय के तत्वावधान में राजा परमर्दिदेव की सुपुत्री चन्द्रावलि की चौथी का संग्राम तथा ब्रह्मानंद [परमाल-राजकुमार] के विवाह का वर्णन है, जो दिल्ली की लड़ाई के नाम से विख्यात है । इसमें महोबा-वीर अपने अद्भुत जौहर का परिचय देकर पृथ्वीराज-सुता ब्याला का विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध,शक्ति से सम्पन्न कराने में सफल होते हैं और दिल्ली-नरेश को अपने मुँह की खानी पड़ती है । दिल्ली की समस्त सेना को आल्हा, ऊदल, मलखान एवं ब्रह्मानन्द द्वारा परास्त कर दिया गया था । तदोपरान्त ऊदल के विवाह की लड़ाई है जो "नरवरगढ़ संग्राम" के नाम से विख्यात है । इसी श्रृंखला में इन्दल-हरण एवं बलखबुखारे की लड़ाई की कथा है । बलखबुखारे की लड़ाई इन्दल के विवाह से सम्बन्ध रखती है ।

पंचम परिच्छेद के अन्तर्गत वर्णित कथा प्रसंगों में "आल्हा-निकासी" की कथा है जिसमें वासुदेव-पुत्र माहिल अपनी कूट नीति के द्वारा आल्हा-ऊदल को महोबा से बेघर कर देने में सफल हो जाते हैं । "कामरू देश(बंगाल)संग्राम" में रतीभान-पुत्र लाखन-राना के विवाह का वर्णन है । यह बूँदीगढ़ संग्राम के नाम से विख्यात है । इस लड़ाई में जादू की लड़ाई का पर्याप्त वर्णन मिलता है । तत्पश्चात् गांजर की लड़ाइयों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है । इसमें ऊदल की अद्भुत वीरता का परिचय मिलता है । गांजर प्रदेश छोटे-छोटे गणों में बंटा हुआ था, जो कन्नौज राज्य के अधीन था । वहां के गण राज्यों के राजा अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर चुके थे और कन्नौज-नरेश को कर देने से इंकार करते थे । उनकी शक्ति का विस्तार हो चुका था । राजा जयचंद के अनुरोध से ऊदल, लाखन को साथ में लेकर गांजर प्रदेश पर आक्रमण कर देते हैं और क्रमशः संपूर्ण राजाओं को परास्त करके,बन्दी बनाकर कन्नौज दरबार में राजा जयचंद के हवाले कर देते हैं । यह संग्राम लगभग तीन माह तक हुआ था । गांजर प्रदेश के गणराज्यों में पटटी, कामरूप [कामाख्या], बंगाल का कुछ भाग, कटक, जिन्सी, गोरखपुर, पटना आदि सम्मिलित थे ।

षष्ठ परिच्छेद में, "परमाल रासो" [आल्हखण्ड] के सिरसागढ़-संग्राम की विवेचना की गई है । इस संग्राम में दिल्ली-नरेश महाराज पृथ्वीराज चौहान एवं सिरसा-नरेश मलखानसिंह के मध्य हुए घमासान युद्ध का चित्रण है । पृथ्वीराज की सेनाओं का संहार करते हुए वीर मलखान एवं उनका भाई सुलखान वीरगति को प्राप्त

हो जाते हैं । मलखान का बध महाराज पृथ्वीराज द्वारा प्रपंच से किया गया था, जिसमें उरई (उ.प्र.) के राजा माहिल की कूटनीति समाहित थी । मलखान की मृत्यु के बाद उनकी रानी गजमोतिन सती हो जाती है । इसी अध्याय में "कीरत सागर" के अर्थात भुजरियों की लड़ाई का वर्णन समाहित है । इस संग्राम के अन्तर्गत, माहिल के कहने से पृथ्वीराज चौहान महोबा पर आक्रमण कर देते हैं । आल्हा-ऊदल को पहले ही महाराज चन्देल ने निष्कासित कर दिया था । उनकी अनुपस्थिति में चौहान का मुकाबला करना साधारण बात न थी । अन्त में चन्देल-कुमार ब्रह्मानंद, पृथ्वीराज की सेना का सामना करते हैं । सूचना पाकर ऊदल व लाखनराना भी कन्नौज से आ जाते हैं । परिणाम स्वरूप दिल्ली-पति को अपने मुँह की खानी पड़ती है । इसके उपरान्त "आल्हा-मनौआ" प्रसंग है । इस प्रसंग के अन्तर्गत महाकवि जगनिक स्वयं, रानी मल्हना की आज्ञानुसार आल्हा-ऊदल को मनाने व वापस महोबा लाने के लिए कन्नौज जाते हैं । कारण यह था, कि आल्हा-ऊदल जैसे महापराक्रमी योद्धाओं से विहीन महोबा पर पृथ्वीराज चौहान बार-बार आक्रमण कर देते थे, क्योंकि वे अपने पुराने अपमानों का बदला लेना चाहते थे ।

सातवें परिच्छेद के तत्वावधान में, आल्हा-ऊदल एवं कन्नौज-नरेश लाखनराना महोबा वापस आते हैं । मार्ग में परहुल एवं कुडहरि आदि राज्यों को पराजित कर, उनके राजाओं को अधीन बनाकर अपने साथ ले लेते हैं । इनमें सिंहा ठाकुर एवं गंगा-ठाकुर आदि हैं । इस प्रसंग के उपरान्त नदी बेतवा के भीषण संग्राम का वर्णन है, जिसमें पृथ्वीराज चौहान पुनः महोबा पर चढ़ाई करके, बेतवा नदी के सभी घाटों पर अनधिकृत रूप से अधिकार कर लेते हैं । लाखनराना जान पर खेलकर युद्ध करते हैं और सभी घाट मुक्त करवाते हैं । इस लड़ाई में लाखन की अद्भुत वीरता का परिचय मिलता है ।

इसी श्रृंखला में ऊदल-हरण तथा ब्याला के गौने की लड़ाइयों की कथा वर्णित है । ब्रह्मानंद का घायल होना तथा वीरगति को प्राप्त होना, ब्याला द्वारा अपने भाई ताहर का शीश काटना, चन्दन बगिया काटना, पृथ्वीराज के दरबार के चन्दन-खंभ उखाड़ना तत्पश्चात ब्याला का ब्रह्मानंद के साथ सती होने के प्रसंग इन लड़ाइयों के प्रमुख अंश हैं । "परमाल रासो" के अन्तर्गत बावन लड़ाइयों का वर्णन है, जिसे बावन-गढ़-विजय के नाम से जाना जाता है । ब्याला-सती, इस रासो ग्रंथ का अन्तिम संग्राम

माना जाता है । इसी संग्राम में महान योद्धा- लाखन, उदल, ब्रह्मा, धांधू, चौड़ियाराय, ताल्हन सैयद, ढेबा आदि सभी काल का ग्रास बनकर रह जाते हैं । ऐसा माना जाता है, कि आल्हा और इन्दल अमरत्व का वरदान प्राप्त थे, अस्तु वे गुरु गोरखनाथ के साथ स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर जाते है । अब शेष रह जाते हैं, महाराज पृथ्वीराज व चन्दवरदाई, जो बाद में मुहम्मद गोरी के युद्ध में कैद कर लिए जाते हैं । राजा परमाल भी ब्याला सती-संग्राम के बाद मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और रानी मल्हना सती हो जाती है । महोबा घराने की अन्य रानियाँ जौहर-व्रत कर लेती हैं । इस प्रकार चौहान, चन्देल और राठौर वंशों का दीपक सदा-सदा के लिए अन्धकार में निमग्न हो जाता है ।

आठवाँ परिच्छेद या अध्याय, "परमाल रासो" [आल्हखण्ड] की भाषा, भाव सौन्दर्य, महाकाव्यत्व आदि पक्षों को उजागर करता है । इसके साथ-साथ आल्हा-गायकी के विभिन्न रूप एवं "परमाल रासो" की युद्ध-परक संस्कृति की भी विवेचना, इसी अध्याय के अन्तर्गत की गई है ।

नवम् परिच्छेद इस शोध-प्रबन्ध का अन्तिम परिच्छेद है, जिसके अन्तर्गत परमाल रासो या आल्हखण्ड की उपजीवी काव्य-संपदा, शोध-प्रबन्ध का निष्कर्ष, शोधकर्ता का मंतव्य या धारणा तथा उपसंहार है । अन्त में संदर्भित पाठ्य-पुस्तकों एवं प्रसंग-ग्रंथों की सूची संलग्न है ।

प्रस्तावित शोध प्रबन्ध का विषय सर्वथा नवीनतम दृष्टि लेकर अवतरित हुआ है । मेरा यह प्रयास रहा है, कि पाठकों को साहित्य के उस कलेवर से परिचित कराया जाए, जो आज भी भारत-भूमि के ओजस्वी गीतों को गाता है । उन वीरों की वीरता से परिचय कराया जाए, जो भारत-माता के लाड़ले सपूत थे, उस खून से रिश्ता स्पष्ट किया जाए, जो भारतीयता का अरूण खून था । मेरा पूर्ण विश्वास है, कि यह शोध-प्रबन्ध नवीन पीढ़ी व विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा । इस ग्रंथ को पढ़कर उन्हें गर्व होगा, कि भारत की पावन मिट्टी आदि काल से ही अद्भुत वीरों को बनाती चली आई है ।

मैं अपने पूज्य गुरु जी डॉ॰ प्रताप नारायण "झा", रीडर, महाराजा सयाजीराव विश्व विद्यालय, बड़ौदा के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिनके

कुशल निर्देशन एवं वात्सल्य भाव से इस शोध-प्रबन्ध को अन्तिम रूप प्रदान किया जा सका । स्नेह एवं प्रोत्साहन के संदर्भ में, मैं श्रीमती "झा" के प्रति भी आभार व्यक्त करना चाहता हूँ । मैं अपनी पूजनीया माताजी एवं पूजनीय पिताश्री के आशीर्वाद से कृतकृत्य हूँ । मैं अपने पूजनीय चाचाजी स्व. श्री दीनदयालु वर्मा [प्रवक्ता] सनातन धर्म इण्टर कालेज उरई [जालौन] उ.प्र. [जो दुर्भाग्य से आज हमारे बीच नहीं हैं, जिनका असामयिक निधन 5.7.1993 को सेवा-निवृत्ति से पूर्व ही हो गया और वे शोध-प्रबन्ध के अन्तिम रूप को देखने में असमर्थ रहे] का भी ऋणी हूँ, जिन्होंने प्रस्तावित शोध-प्रबन्ध की सृजना में न केवल उत्साह-वर्धन किया, अपितु समय-समय पर उचित निर्देशन एवं पुस्तकीय सहायता प्रदान कर अनुगृहीत किया । मैं दिवंगत आत्मा की परम शांति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ । मेरा हृदय, महाराज सयाजीराव विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष एवं समस्त प्राध्यापकों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता-ज्ञापन करना चाहता है, जिन्होंने समय-समय पर उचित मार्गदर्शन किया ।

मैं, केन्द्रीय विद्यालय, ई.एम.ई., बड़ौदा के भूतपूर्व प्राचार्य श्री दयाशंकर गौतम एवं विद्यालय-परिवार के समस्त साथियों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत शोध-कार्य के लिए अभिप्रेरित किया । शोध-कार्य की अभिप्रेरणा के संदर्भ में, मैं डॉ. हरिप्रसाद पाण्डेय [प्रवक्ता], संस्कृत महाविद्यालय, बड़ौदा एवं श्रीमती डॉ. शम्भो पाण्डेय का विशेष ऋणी हूँ । मैं अपने इष्ट मित्रों एवं विभिन्न पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों के सहयोग एवं उत्साह-वर्धन हेतु सराहना करता हूँ । अन्त में, मैं अपनी जीवन-सहयोगिनी श्रीमती द्रौपदी वर्मा के सहयोग की भी हृदय से सराहना करता हूँ जिन्होंने प्रस्तावित साधना में पग-पग पर उचित वातावरण प्रदान किया । मेरे नन्हे-मुन्ने बच्चे- कु. पूजा वर्मा, विमल वर्मा, आदित्य वर्मा भी वातावरण-निर्माण में आशीर्वाद के पात्र हैं । अन्त में पुनः, मैं एक बार अपने गुरुवर श्री पी.एन.झा को प्रणाम करता हूँ ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में, टंकण सम्बन्धी अशुद्धियों को पूर्णतः शुद्ध करने का प्रयास किया गया है, तथापि दृष्टिच्युत टंकण-अशुद्धियों के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ ।

निवेदक,

आशाराम वर्मा

[आशा राम वर्मा]

--==xxxxx==--